1
परम्पराएं और प्रथाएं

''हे भाइयो, मैं तुम्हें सराहता हूं कि सब बातों में तुम मुझे स्मरण करते हो; और जो परम्पराएं मैं ने तुम्हें सौंपी हैं, उनका पालन करते हो'' (1 कुरिन्थियों 11:2)।

किसी विषय पर बाइबल में से निष्कर्ष निकालने के लिए भाषा, शब्दों के अर्थ का सही इस्तेमाल और संदर्भ के भावार्थ की समझ होनी आवश्यक है। ये वे हथियार हैं, जिनके द्वारा अपने विचार और अवधारणाएं दूसरे तक पहुंचाए जाते हैं। पौलुस ने लिखा है:

> मनुष्यों में से कौन किसी मनुष्य की बातें जानता है, केवल मनुष्य की आत्मा, जो उस में है ? वैसे ही परमेश्वर की बातें भी कोई नहीं जानता, केवल परमेश्वर का आत्मा। परन्तु हम ने संसार की आत्मा नहीं, परन्तु वह आत्मा पाया है, जो परमेश्वर की ओर से है, कि हम उन बातों को जानें, जो परमेश्वर ने हमें दी हैं। जिन को हम मनुष्यों के ज्ञान की सिखाई हुई बातों में नहीं, परन्तु आत्मा की सिखाई हुई बातों में, आत्मिक बातें आत्मिक बातों से मिला मिलाकर सुनाते हैं (1 कुरिन्थियों 2:11–13)।

इन आयतों में पाए जाने वाले दो महत्वपूर्ण नियम मसीही स्त्री के हमारे अध्ययन में प्रासंगिक हैं। पहला तो यह कि परमेश्वर ने प्रेरणा पाए हुए लोगों पर अपने विचार प्रकट कर दिए हैं ताकि हमें परमेश्वर के मन का ''पता'' चल सके। 1 कुरिन्थियों 2:12 में ''जानें'' शब्द *ginosko* नहीं है, जिसका अर्थ अनुभव से ज्ञान प्राप्त करना या तर्क के आधार पर अनुमान लगाना है। यह यूनानी शब्द *eidomen* का अनुवाद है, जिसका अर्थ देखना या समझना है। फिर अपने विचार या संदेश हम तक पहुंचाने के लिए परमेश्वर ने *iogois* का इस्तेमाल किया है, जिसका अनुवाद ''बातों'' (1 कुरिन्थियों 2:13) हुआ है। मानवीय तर्क या केवल अनुमान के आधार पर हम इस संदेश को समझ या परमेश्वर के मन को जान नहीं सकते थे, परन्तु ''बातों'' के अर्थों अर्थात उन अर्थों पर निर्भर रहना आवश्यक है, जिनके द्वारा उसने स्वयं को प्रकट किया है।

इस तथ्य के आधार पर कि परमेश्वर ने ''बातों'' के द्वारा हम तक अपने विचार पहुंचाए हैं, हमें उन सच्चाइयों को, जो उसने प्रकट की हैं, ''जानने'' के लिए उसकी ''बातों'' के अर्थ को समझना आवश्यक है। इसी कारण स्त्रियों के लिए परमेश्वर के प्रबन्ध को समझने के लिए अपने अध्ययन में कई बार शब्दों का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है।

परम्परा और स्त्री की भूमिकाएं

परमेश्वर की योजना में स्त्री की भूमिका पर चर्चा करने वाले लोग ''परम्परा'' और ''प्रथाओं'' की बात करते रहते हैं। आमतौर पर ''परम्परा'' और ''पारम्परिक'' शब्दों का इस्तेमाल पीढ़ी दर पीढ़ी होता है, जिन्हें मानना या न मानना व्यक्ति की अपनी इच्छा पर होता है। समाज में कई गुट ऐसे होते हैं, जो इन परम्पराओं को दूसरों पर थोपना चाहते हैं।

बाइबल के परिप्रेक्ष्य से ''परम्परा'' अपने आप में न तो अच्छी है और न बुरी, इसलिए इस पर इससे बढ़कर विचार किया जाना चाहिए कि इसे ''परम्परा'' माना जाए या नहीं। बाइबल में ''परम्परा'' (यू.: *paradosis*) में ''चली आ रही प्रथा'' का विचार मिलता है। पहला प्रश्न यह है कि ''इसे किसने आरम्भ किया?'' यह परमेश्वर की ओर से है या मनुष्यों की ओर से? दूसरा प्रश्न यह है कि ''क्या परमेश्वर ने इसे दिया है?'' जो परम्पराएं परमेश्वर की ओर से नहीं हैं, उनका उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। देश, परिवार, समाज, स्कूल, प्रभु की कलीसिया की मण्डलियां और अन्य समूह अपनी परम्पराएं बना सकते हैं, यदि वे परमेश्वर के वचन को दरकिनार न करती हों।

परमेश्वर की ओर से दी गई कोई भी paradosis अर्थात ''परम्परा'' या ''प्रथा'' परमेश्वर की प्रेरणा पाए हुए बाइबल के लेखकों पर प्रकट की गई थी? आरम्भिक मसीही उन्हें मानते थे और आज हमारे लिए भी मानना आवश्यक है (1 कुरिन्थियों 11:2; 2 थिस्सलुनीकियों 2:15; 3:6)। किसी को भी इन परम्पराओं को हल्के से नहीं लेना चाहिए। परन्तु मनुष्य द्वारा दी गई ऐसी कोई भी परम्परा जिससे परमेश्वर की आज्ञाओं का उल्लंघन होता हो, नहीं माननी चाहिए (मत्ती 15:3-9; मरकुस 7:6-13; कुलुस्सियों 2:8)।

परम्परा का मूल्यांकन निम्न परीक्षणों का इस्तेमाल करके होना चाहिए: (1) क्या यह परम्परा यीशु की ओर से दी गई है? यदि हां, तो इसे मानना आवश्यक है (मत्ती 28:20)। (2) क्या परमेश्वर द्वारा इस प्रथा की निन्दा की गई है? (उदाहरण के लिए, देखें 1 यूहन्ना 5:21.)। यदि हां, तो इसे नकारा जाना चाहिए। (3) क्या इसमें परमेश्वर ने अपनी पसन्द चुनने की बात कही है? यदि हां, तो हमें उसकी बात माननी चाहिए। (देखें इब्रानियों 7:12-14.) यदि परमेश्वर की पसन्द रोक लगाने वाली न होती तो उसका वचन व्यर्थ होना था। बाइबल में जब भी कोई उदारहण मिले, इसे मानना और मनुष्यों की परम्पराओं से बढ़कर उसका सम्मान किया जाना आवश्यक है। (4) यदि किसी विशेष बात में परमेश्वर ने कोई पसन्द नहीं रखी है तो हमें उस क्षेत्र में उठने वाली परम्पराओं को मानने या ठुकराने की छूट है। (देखें रोमियों 14:2, 3.)

पुरुषों और स्त्रियों की भूमिका

हमारे समाजों में पुरुषों और स्त्रियों की पारम्परिक भूमिकाएं रही हैं, जो अलग-अलग समयों और अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग हो सकती हैं। दूसरी ओर कुछ भूमिकाएं हैं जो कभी नहीं बदल सकतीं, क्योंकि वे पुरुषों और स्त्रियों की शारीरिक और मानसिक

बनावट के आधार पर होती हैं। कई प्रकार से पुरुषों और स्त्रियों में कोई अन्तर नहीं है, परन्तु अन्य प्रकार से उनमें अन्तर हैं। परमेश्वर ने उन्हें ऐसे ही बनाया है। परमेश्वर सृष्टिकर्त्ता है इस कारण केवल उसे ही पता है कि उनकी भूमिकाओं के लिए और एक-दूसरे के साथ उनके सम्बन्धों के लिए सबसे अच्छा प्रबन्ध क्या है।

पुरुषों और स्त्रियों के अलग होने और उनकी अलग-अलग ज़िम्मेदारियों के बावजूद इसका उनके गुण से परमेश्वर के व्यवहार पर कोई असर नहीं होता। उसकी नज़र में वे समान हैं। परमेश्वर ने पुरुषों और स्त्रियों को उनके स्वभाव के आधार पर जीवन में अलग-अलग भूमिकाएं और ज़िम्मेदारियां दी हैं।

परम्परा और प्रथाएं

प्रथाओं और परम्पराओं को आमतौर पर एक ही श्रेणी में रखा जाता है। इनके अर्थ एक जैसे ही हैं: ''प्रथा'' की परिभाषा ''किसी विशेष समूह या धर्म के लोगों द्वारा मानी जाने वाली रीति'' के रूप में की जाती है,[1] और ''परम्परा'' को ''पीढ़ी दर पीढ़ी [विशेषकर] ज़बानी चलती आ रही संस्कृति'' कहा जाता है।[2] प्रथा में किसी संस्कृति या समाज द्वारा प्राथमिकता दिए जाने वाली रीति या ढंग हो सकती है, क्योंकि उस ढंग से वे आमतौर पर कुछ करते हैं। परम्परा समाज के विशेष वर्गों में सम्मानित रीति हो सकती है, क्योंकि यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को आगे सौंपी गई है।

प्रथाओं का बाइबल का विचार नीचे दिए गए नियमों में आता है:

(1) कुछ प्रथाओं को मसीही लोगों द्वारा माना जाता है क्योंकि वे समाज द्वारा आरम्भ की गई हैं। NASB से 1 पतरस 2:13, 14 के अर्थ का अच्छा संदेश मिल सकता है: ''प्रभु के लिए मनुष्यों के ठहराए हुए हर एक संस्थान के आधीन रहो, चाहे सब पर प्रधान होने के कारण राजा के या कुकर्मियों को दण्ड देने और सुकर्मियों की प्रशंसा के लिए उसके भेजे हुए हाकिमों के।'' मसीही व्यक्ति के लिए मनुष्यों के सब ''संस्थानों'' (यू.: *ktisis;* मूलत:,''सृष्टि'') के अधीन होना आवश्यक है। इसमें मनुष्य द्वारा ठहराए गए नियम और प्रथाएं भी आती हैं, यदि वे परमेश्वर की आज्ञाओं का उल्लंघन न करती हों। (देखें प्रेरितों 5:29.)

(2) मसीही लोगों द्वारा वहां की कुछ प्रथाओं को जहां वे रहते हैं संस्कृति के साथ चलते हुए मानना चाहिए है। ऐसा करने से उस समाज में खोए हुओं को सिखाने के लिए उन्हें मिलने वाले अवसर बढ़ जाएंगे, चाहे ऐसा करना हर संस्कृति में उपयोगी न हो। पौलुस जब अन्य जातियों के बीच में था तो अन्यजाति की तरह रहा; जब वह यहूदियों के बीच था तो उसने यहूदी प्रथाओं का पालन किया (1 कुरिन्थियों 9:20)। उसने जिस भी प्रथा को माना, उसमें ऐसा कुछ नहीं किया जिससे मसीह की शिक्षा का विरोध होता हो (1 कुरिन्थियों 9:21)।

तीमुथियुस का खतना करना चुनने और तीतुस का खतना करने से पौलुस के इनकार से उसका व्यवहार स्पष्ट दिखाया गया है। यहूदियों में जिन्हें मालूम था कि तीमुथियुस का

पिता यूनानी और उसकी माता यहूदी है, सुसमाचार के प्रचार में किसी प्रकार की रुकावट को निकालने के लिए उसने तीमुथियुस का खतना किया (प्रेरितों 16:3)। परन्तु कलीसिया को तीतुस का खतना नहीं करने दिया, जिसका कोई यहूदी पूर्वज नहीं था; कलीसिया को तीतुस की स्वतन्त्रता छीनने का अधिकार नहीं था (गलातियों 2:3-5)। तीमुथियुस से पौलुस को यहूदियों में प्रचार के अवसर मिल गए, जिन्होंने किसी खतना रहित साथी के साथ घूमने पर उसकी बात नहीं सुननी थी। दूसरी ओर तीतुस के खतने की अनुमति देने से कलीसिया में गलत संदेश जाना था, जिसका अर्थ यह था कि यहूदी प्रथाएं और नियम अन्यजाति मसीहियों के लिए मानने आवश्यक हो सकते हैं।

(3) मसीही लोगों को परमेश्वर द्वारा मना की गई प्रथाओं में भाग नहीं लेना चाहिए। यद्यपि पौलुस ने अन्यजातियों की कुछ प्रथाओं को माना, परन्तु उसे और अन्य मसीही लोगों को भ्रष्ट जीवन की उनकी प्रथाओं को मानने की अनुमति नहीं थी। पतरस ने लिखा, "क्योंकि अन्यजातियों की इच्छा के अनुसार काम करने और लुचपन की बुरी अभिलाषाओं, मतवालापन, लीलाक्रीड़ा, पियक्कड़पन, और घृणित मूर्तिपूजा में जहां तक हमने पहिले समय गंवाया, वही बहुत हुआ" (1 पतरस 4:3)। मसीही लोगों को परमेश्वर की सीमाओं को तोड़ने वाली प्रथाओं को मानने की मनाही है।

(4) कुछ प्रथाएं तटस्थ हो सकती हैं। मसीही व्यक्ति इनमें जो कुछ करता/करती है, उसकी अपनी प्राथमिकताओं की बात है। मसीही लोगों को किसी समाज में खाए जाने वाले अलग-अलग भोजनों को खाना या न खाना चुनने की छूट है: "खाने वाला न खाने वाले को तुच्छ न जाने और न खाने वाला खाने वाले पर दोष न लगाए; क्योंकि प्रभु ने उसे ग्रहण किया है" (रोमियों 14:3)। यदि मसीह का कार्य प्रभावित न हो, तो मसीही लोगों को किसी प्रथा को मानने का या उसे न मानने का अधिकार है।

(5) मसीही लोग उपयोगी प्रथाएं बना सकते हैं, परन्तु आवश्यक नहीं है कि उन्हें माना ही जाए। सिखाने के लिए यीशु और पौलुस की रीति या प्रथा आराधनालयों में जाने के लिए थी (लूका 4:16; प्रेरितों 17:2)। उनके लिए यह अच्छी प्रथा थी, परन्तु ऐसा करना मसीही लोगों के लिए आवश्यक नहीं है।

(6) कुछ समाजों की प्रथाएं हैं, जिन्हें परमेश्वर ने मसीही लोगों को मानने की आज्ञा दी है। मसीही लोगों को इन्हें मानना आवश्यक है, क्योंकि परमेश्वर ने उन्हें मानने की आज्ञा दी है, न कि इसलिए कि वे समाज की प्रथाएं हैं। नीचे किसी संस्कृति में पाई जाने वाली प्रथाओं के उदाहरण हैं, जो उस मसीही समाज पर लागू थे।

क. यहूदी लोगों की प्राचीनों को अपने अगुवे बनाने की प्रथा या रिवायत थी (मत्ती 15:2; 16:21; लूका 22:66; प्रेरितों 4:5)। कलीसिया में भी प्राचीनों की नियुक्ति ऐसे ही होती थी (प्रेरितों 14:23; तीतुस 1:5)।

ख. यहूदी लोग हर सप्ताह इकट्ठे होते थे (प्रेरितों 13:27; 15:21)। मसीही लोगों की भी साप्ताहिक सभाएं होती थीं (प्रेरितों 20:7; 1 कुरिन्थियों 16:2; इब्रानियों 10:25)।

ग. यहूदियों में मामले को सुलझाने के लिए गवाह आवश्यक होते थे (व्यवस्थाविवरण

17:6; मत्ती 26:60)। मसीही लोगों के लिए भी किसी बात की पुष्टि या किसी आरोप में समर्थन के लिए दो या अधिक गवाह आवश्यक हैं (2 कुरिन्थियों 13:1; 1 तीमुथियुस 5:19)।

घ. अन्यजातियों और यहूदियों के लिए विवाह एक प्रथा थी। परमेश्वर केवल विवाहित पुरुषों व स्त्रियों से इकट्ठे रहने की अपेक्षा करता है (रोमियों 7:2, 3; 1 कुरिन्थियों 7:2, 9)।

ड. शुद्धिकरण के लिए यहूदी लोग रस्मी नहाना-धोना करते थे (मरकुस 7:3, 4)। यीशु के लहू में धोए जाने के लिए परमेश्वर हम से पानी में दफ़नाए जाने की मांग करता है (मरकुस 16:16; प्रेरितों 2:38; 22:16; कुलुस्सियों 2:12, 13; इफिसियों 5:26)।

यह साबित करना कि कोई बात समाज की प्रथा थी, परमेश्वर की ओर से शर्त के रूप में इसे नकार नहीं देता। विवाह, पाप धोने के लिए डुबकी, पति/पत्नी सम्बन्ध, कलीसिया में स्त्री की भूमिका और परमेश्वर द्वारा किसी भी और प्रथा की आज्ञा की आवश्यकता में यही बात सत्य है। यह तथ्य कि किसी एक सांस्कृतिक प्रथा और सामाजिक प्रथा का परमेश्वर की ओर से आज्ञा थी, इसे मसीही लोगों पर लागू करने के लिए किसी प्रकार कम नहीं करता। समाज जो भी करता हो या न करता हो, परमेश्वर की आज्ञा अवश्य माननीय है। जब पौलुस ने कहा कि ''इस संसार के सदृश्य न बनो, ...'' (रोमियों 12:2), तो उसके कहने का अर्थ था कि समाज के पापपूर्ण व्यवहार से बचा जाए; हमारे लिए उसका यह अर्थ नहीं था कि हम सांस्कृतिक प्रथा को छोड़ दें। ''मसीही व्यक्ति किसी शिक्षा को केवल इसलिए नहीं नकार सकता कि यह समाज में थी।''[3]

स्त्री की भूमिका और उसकी ज़िम्मेदारियों के सम्बन्ध में बात करते हुए, बाइबल संस्कृति की ओर ध्यान नहीं दिलाती, बल्कि ध्यान सृष्टि के क्रम तथा परमेश्वर के नियम में परमेश्वर की योजना की ओर है:

> क्योंकि पुरुष स्त्री से नहीं हुआ, परन्तु स्त्री पुरुष से हुई है; और पुरुष स्त्री के लिए नहीं सृजा गया, परन्तु स्त्री पुरुष के लिए सृजी गई है (1 कुरिन्थियों 11:8, 9; देखें 1 तीमुथियुस 2:13)।

> स्त्रियां कलीसिया की सभा में चुप रहें, क्योंकि उन्हें बातें करने की आज्ञा नहीं, परन्तु आधीन रहने की आज्ञा है: जैसा व्यवस्था में लिखा भी है (1 कुरिन्थियों 14:34)।

प्रथाओं को कभी उसकी भूमिका का आधार नहीं कहा गया।

आइए एक उदाहरण पर विचार करते हैं। कुछ लोगों ने निष्कर्ष निकाला है कि ''पवित्र चुम्बन'' केवल एक प्रथा थी न कि अवश्य मानने के लिए। इस उदाहरण के आधार पर उन्होंने परमेश्वर की अन्य आज्ञाओं को न अनावश्यक आज्ञाएं कह कर नकारने की कोशिश की है। ''पवित्र चुम्बन'' (रोमियों 16:16; 1 कुरिन्थियों 16:20; 2 कुरिन्थियों 13:12; 1 थिस्सलुनीकियों 5:26) और ''प्रेम का चुम्बन'' (1 पतरस 5:14) के सम्बन्ध

में वाक्यों से अभिवादन में किए जाने वाले चुम्बन का ढंग तय होना था न कि चुम्बन अपने आप में कोई आज्ञा थी। उस समाज के लोग पहले से एक दूसरे का अभिवादन ऐसे ही करते थे, जिस कारण पौलुस को उन्हें आज्ञा देने की आवश्यकता नहीं थी कि एक दूसरे का अभिवादन चुम्बन ऐसे करो। यह आज्ञा उन्हें एक-दूसरे का चुम्बन लेने का *ढंग* बताने के लिए था। यह कामुक अर्थात वासनात्मक नहीं, बल्कि ''पवित्र चुम्बन,'' अर्थात ''प्रेम का चुम्बन'' होना था।

एक पिता अपने बेटे से कह सकता है, ''ध्यान से चलाना।'' ज़ोर ''चलाना'' पर नहीं, बल्कि ''ध्यान से'' पर है। यह जानते हुए कि लड़का गाड़ी चला रहा होगा, पिता ने उसे चलाने की आज्ञा नहीं दी। ज़ोर ''ध्यान से'' शब्द पर था। ''ध्यान से'' शब्द पर ज़ोर चलाने का *ढंग* बताने के लिए था। यही बात पवित्र चुम्बन में थी। आज्ञा ''चुम्बन'' लेने की नहीं थी, बल्कि उस समाज में पाए जाने वाले चुम्बन के ढंग को संचालित करने के लिए थी।

औरों ने 1 कुरिन्थियों 11:2-16 में स्त्री के सिर ढांपने पर पौलुस की चर्चा की अपनी ही व्याख्या को आधार बना कर परमेश्वर की आज्ञाओं को केवल प्रथाएं बता कर नकारने की कोशिश की है।[4] इन आयतों से यह साबित नहीं होता कि परमेश्वर ने मसीही लोगों को प्रथाओं को मानने की आज्ञा दी है। पूर्वी स्त्रियों के विपरीत यूनानी और रोमी स्त्रियां सिर नहीं ढांपती थीं। रिचर्ड ओस्टर ने लिखा है:

> एक दृष्टिकोण से, पवित्र शास्त्र की हर बात में संस्कृति की झलक होती है। पानी में डुबकी हो, या क्रूस पर चढ़ाए जाने की बात, ये शिक्षाएं और प्रथाएं विभिन्न संस्कृतियों और संस्कृतियों की भाषाओं में पाई जाती हैं। पवित्र शास्त्र की कुछ मूल शिक्षाएं ''सांस्कृतिक आयामों'' वाली होती हैं, जिस कारण ''संस्कृति'' को ''अवश्य माननीय'' या ''अनादि'' के विपरीत डालना गलत होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि नये नियम में क्या अवश्य माननीय है और क्या नहीं, में अन्तर करने का सबसे सही ढंग सच्चाई और संस्कृति को दो भागों में बांटने का आधार नहीं है। बाइबल की सब सच्चाइयों की अपनी संस्कृति होती है, इसलिए लगता है कि समझना सही है कि जिसे हम संस्कृति मानते हैं, वास्तव में वह आधुनिक जगत में आज भी अवश्य माननीय होगी।[5]

परम्परा और प्रकाशन

पुरुषों और स्त्रियों में सम्बन्ध के लिए परमेश्वर की इच्छा को जानने की कोई भी खोज प्रकाशन से ही शुरू होनी चाहिए। अनुभव, प्रथा और तर्क सच्चाई में ठोकर दिला सकते हैं। परन्तु परमेश्वर के प्रकाशन से दिए वचन में ठोस आधार मिल सकता है।

इस अध्ययन को हम स्त्री के विषय से सम्बन्धित आयतों पर बड़े ध्यान से विचार करके करेंगे। हम अनुमान से, अमान्य मान्यताओं तथा पहले से ही मन में पाए जाने वाले निष्कर्षों से बचने का प्रयास करेंगे। इनसे पूरी तरह से बचने के लिए मुनष्यता से ईश्वरीयता

की ओर बाहर को कदम रखना होगा; यह हो नहीं सकता, इसलिए भावनाओं और पूर्वधारणाओं से भरे इस विषय को देखते हुए हमें हर सम्भव निष्पक्ष होने की कोशिश करनी चाहिए। हम सब को इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ने का प्रयास करना चाहिए कि ''परमेश्वर इस विषय पर क्या कहता है?'' इसे अपना लक्ष्य बना लें तो हम सही निष्कर्ष पर पहुंच पाएंगे।

इस विषय पर कई विद्वानों की राय एक न होने का अर्थ यह नहीं है कि हम सच्चाई की खोज करना बन्द कर दें। यदि इससे हम यह अध्ययन करना छोड़ दें तो हम किसी भी विषय पर सच्चाई को नहीं जान पाएंगे।

अध्ययन किए जा सकने वाले लगभग हर विषय पर विद्वानों के अलग-अलग विचार पाए जाते हैं। अध्ययन करते हुए हमें एक-दूसरे के प्रति प्रेम रखना चाहिए और किसी दूसरे के विवेक पर अपने विचार थोपने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। एकता बनाए रखने के लिए एकरूपता की खातिर हमें अपने अधिकारों का त्याग भी करना पड़े तो भी कर देना चाहिए। यदि इससे दूसरों के कामों से परमेश्वर के साथ हमारे सम्बन्ध में कोई फर्क न पड़ता हो।

सारांश

यदि हम यीशु के वचन में बने रहें, तो सच्चाई को जान सकते हैं (यूहन्ना 8:31, 32)। धार्मिक मामलों की हर बात में हमारी सोच सही होनी चाहिए।

पुरुषों और स्त्रियों के लिए परमेश्वर की इच्छा को जानने का सही ढंग खुले मन से उसके वचन का अध्ययन करना है। आइए हम परमेश्वर की परम्पराओं और स्त्रियों के सम्बन्ध में उसकी आज्ञाओं को समझने के गम्भीर प्रयास करें। सच्चाई परमेश्वर के वचन में है, न कि मनुष्य की परम्पराओं या आज्ञाओं में (तीतुस 1:14; कुलुस्सियों 2:22)।

टिप्पणियां

[1]द *अमेरिकन हैरिटेज डिक्शनरी,* तीसरा संस्क., s.v. "custom." [2]वही, s.v. "tradition." [3]एवरेट एण्ड नैंसी फर्ग्यूसन, ''NT टीचिंग ऑन द रोल ऑफ़ विमेन इन द असेम्बली,'' *गॉस्पल एडवोकेट* (अक्तूबर 1990): 30. [4]1 कुरिन्थियों 11 और स्त्रियों के सिर ढांपने के बारे में अतिरिक्त भाग में दिए पाठ *1* कुरिन्थियों *11* पर नील लाइटफ़ुट और *1* कुरिन्थियों *11 पर जे.डब्ल्यू.मैक्गार्वे* देखें। [5]रिचर्ड ओस्टर, जूनियर ''कल्चर ऑर बाइंडिंग प्रिंसीपल-ए स्टडी ऑफ़ हैंड कवरिंग्स हेयरस्टाइल्स, एटसेटरा (1 कुरिन्थियों 11:16),'' *हार्डिंग यूनिवर्सिटी सिक्सटी सैवंथ एनुअल लैक्चरशिप* (1990): 428.